पुरस्कार वितरण समारोह – एक झलक

मंच पर बाएं से प्रो. विजय कुमार मल्होत्रा, माननीय राज्य मंत्री श्री के.एच.मुनियप्पा, श्री सरोज कुमार दास, संयुक्त सचिव, भारत सरकार और इस विभाग की हिंदी सलाहकार समिति के माननीय सदस्य श्री दयानंद शुक्ल

सड़क परिवहन और राजमार्ग विभाग द्वारा दिनांक 22 अक्तूबर, 2007 को डिप्टी स्पीकर हॉल, कांस्टीट्यूशन क्लब, विट्ठल भाई पटेल हाउस, रफी मार्ग, नई दिल्ली में पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन किया गया। माननीय राज्य मंत्री (पोत परिवहन, सड़क परिवहन और राजमार्ग) ने पुरस्कार विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए। माननीय राज्य मंत्री जी ने इस समारोह में सड़क परिवहन और राजमार्ग विभाग के अधीन आने वाले विषयों पर हिंदी में मौलिक पुस्तक लेखन योजना के अधीन वर्ष 2005–06 के पुरस्कार विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए। इस योजना का प्रथम पुरस्कार श्री अत्तर सिंह कौशिक को उनकी पुस्तक **''सड़क सुरक्षा''** के लिए दिया गया। उन्हें 30,000/– रूपए का नकद पुरस्कार और एक प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। इस योजना का द्वितीय पुरस्कार श्री बजरंग लाल जेठू को उनकी पुस्तक ''परिवहन के पर्यावरण–मित्र साधन'' को दिया गया। उन्हें 20,000/– रुपए का नकद पुरस्कार और एक प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

माननीय राज्य मंत्री जी से हिंदी में मौलिक पुस्तक लेखन योजना का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री अत्तर सिंह कौशिक

माननीय राज्य मंत्री जी से हिंदी में मौलिक पुस्तक लेखन योजना का द्वितीय पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री बजरंग लाल जेठू

इस समारोह में सड़क परिवहन और राजमार्ग विभाग में हिन्दी पखवाड़े (दिनांक 14 सितम्बर, 2007 से 28 सितम्बर, 2007 तक) के दौरान आयोजित हिन्दी निबंध प्रतियोगिता, हिन्दी टिप्पण–आलेखन प्रतियोगिता, हिन्दी अनुवाद प्रतियोगिता, आशु भाषण प्रतियोगिता, प्रश्न मंच प्रतियोगिता और हिन्दी काव्य पाठ प्रतियोगिता के पुरस्कार विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए गए। हिन्दी निबंध, हिन्दी टिप्पण–आलेखन और हिन्दी अनुवाद प्रतियोगिताएं हिंदी भाषी और हिंदी इतर भाषी प्रतिभागियों के लिए अलग–अलग की गईं। हिंदी आशुभाषण प्रतियोगिता में हिंदी इतर भाषी प्रतिभागियों को प्राप्त अंकों पर 20 प्रतिशत अतिरिक्त अंकों का लाभ दिया गया। जबकि प्रश्न मंच प्रतियोगिता और हिन्दी काव्य पाठ प्रतियोगिता हिंदी भाषी और हिंदी इतर भाषी दोनों वर्गों के प्रतिभागियों के लिए खुली प्रतियोगिताएं थीं। इन प्रतियोगिताओं के पुरस्कार विजेताओं को निम्नानुसार नकद पुरस्कार प्रदान किए गए:–

प्रथम पुरस्कार	2000/–रुपए
द्वितीय पुरस्कार	1500/–रुपए
तृतीय पुरस्कार	1000/–रुपए
सांत्वना पुरस्कार–1	750/–रुपए
सांत्वना पुरस्कार–2	600/–रुपए
सांत्वना पुरस्कार–3	500/–रुपए

प्रश्न मंच प्रतियोगिता को छोड़कर अन्य सभी प्रतियोगिताओं के पुरस्कार विजेताओं को प्रमाण पत्र भी दिए गए।

हिंदी निबंध प्रतियोगिता के हिंदी भाषी वर्ग का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते हुई श्री रनवीर सिंह

हिंदी अनुवाद प्रतियोगिता के हिंदी भाषी वर्ग का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करती हुई सुश्री मोनिका राय

हिंदी काव्य पाठ प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री कुलदीप सिंह

हिंदी टिप्पण आलेखन प्रतियोगिता के हिन्दी इतर भाषी वर्ग का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करती हुई सुश्री कुहेलि एस. चौधरी

हिंदी आशुभाषण प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री प्रिय रंजन आचार्य

माननीय राज्य मंत्री जी पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री पुरुषोत्तम कुमार

इस समारोह में सरकारी कामकाज मूल रूप से हिन्दी में करने के लिए इस विभाग के अधिकारियों और कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय, भारत सरकार की **हिन्दी टिप्पण आलेखन प्रोत्साहन योजना** के अधीन वर्ष 2006–07 के लिए इस विभाग के श्री शशिपाल शर्मा, सहायक, श्री हेमन्त धवन, उच्च श्रेणी लिपिक, श्रीमती डेजी भारती कुल्लू, उच्च श्रेणी लिपिक और श्री एस. रामास्वामी, विशेष कार्य अधिकारी को भी पुरस्कृत किया गया।

टिप्पण– आलेखन प्रोत्साहन योजना वर्ष 2006–07 का पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री एस. रामास्वामी

इस अवसर पर माननीय राज्य मंत्री (पोत परिवहन, सड़क परिवहन और राजमार्ग) जी ने पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई देते हुए कहा कि उनका मानना है कि किसी प्रतियोगिता में उत्साह के साथ भाग लेना पुरस्कार जीतने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि पिछले वर्ष उन्होंने हिंदी में मौलिक पुस्तक लेखन योजना चलाने के लिए कहा था। उन्हें खुशी है कि इस समारोह में हिंदी में मौलिक पुस्तक लेखन योजना के पुरस्कार विजेताओं को भी पुरस्कृत किया गया है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस विभाग द्वारा हिंदी में प्रकाशित की जा रही **पथ भारती** पत्रिका का अगला अंक शीघ्र ही आपके हाथों में होगा। उन्होंने इच्छा जाहिर की कि इस अंक में विभाग के अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा लिखे गए लेखों को भी शामिल किया जाए।

उन्होंने चाहा कि विभाग के संबंधित अधिकारी हिंदी पखवाड़े के दौरान आयोजित होने वाली सभी प्रतियोगिताएं हिंदी भाषी और हिंदी इतर भाषी प्रतिभागियों के लिए अलग–अलग आयोजित करने पर दोबारा विचार करे।

अंत में, माननीय राज्य मंत्री जी ने पुरस्कार विजेताओं को पुनः हार्दिक बधाई देते हुए यह आग्रह किया कि वे सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए भविष्य में और भी उत्साह से काम करे। उन्होंने यह भी आग्रह किया कि हिंदी पखवाड़े का आयोजन एक परंपरा के रूप में ही नहीं किया जाना चाहिए अपितु मंत्रालय के विभिन्न कार्यों में राजभाषा हिंदी का प्रयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि वे जानते हैं कि मंत्रालय में राजभाषा के कार्यान्वयन में कई कठिनाईयाँ हैं क्योंकि इस मंत्रालय का अधिकांश कार्य तकनीकी प्रकृति का है। उन्होंने उन सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को भी अपनी ओर से बधाई दी, जो इस पखवाड़े को सफल बनाने में तत्पर रहे। माननीय राज्य मंत्री जी का धन्यवाद करने के बाद पुरस्कार वितरण समारोह का सपन्न हुआ।

फ्री में क्या है भाई

(हास्य व्यंग)

हमारी धर्मपत्नी ने हमेशा की तरह हमें किराने के सामान की लम्बी–चौड़ी सूची पकड़ाते हुए मुम्बई के किसी भाई की तरह धमकी देते हुए कहा–''सामान जरा ध्यान से देखभाल कर लाना, पिछली बार की तरह मत ले आना, और अगर इसमें से एक भी चीज रह गई तो.....''

''समझ गया, समझ गया''–इतना कहकर मैं घर से टूथपेस्ट की तरह निकल गया और दस मिनट बाद ही परचून की दुकान पर खड़ा होकर उस चीथड़े से अपना पसीना पोंछ रहा था, जिसे दुनिया क्या, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तक, मुझे छोड़कर कोई भी व्यक्ति ''रूमाल'' नहीं कह सकता। परचून की दुकान पर मेरे आगे खड़ा हुआ ग्राहक दुकानदार से बोला–

''कोई चाय–पत्ती देना''
''कौन सी''– दुकानदार ने पूछा

''कौन सी से क्या मतलब''– ग्राहक शेर की तरह दहाड़ा। ''मेरा मतलब कौन से ब्रांड की''– दुकानदार ने समझाते हुए पूछा।

''अरे सेठजी। चाय–पत्ती में ब्रांड क्या देखना। पत्ती–पत्ती सभी एक सी। आप तो सिर्फ यह बताओ कि किस पत्ती के साथ 'फ्री' वाला आयटम क्या–क्या है''– ग्राहक ''फ्री वाले आयटम'' पर सीमा से अधिक वजन डालते हुए बोला।

दुकानदार चाय पत्ती के साथ ''फ्री'' वाले आयटम दिखाते हुए बोला– ''देखिए। इस चाय पत्ती के साथ स्टील का यह 'कटोरा' फ्री है और इसके साथ 'स्टील का डिब्बा''

''आप केवल 'फ्री' वाले आयटम दिखाइए, चाय पत्ती दिखाने में टाईम खराब करने की जरूरत नहीं है''–ग्राहक ने दुकानदार को टोकते हुए कहा।

दुकानदार ने कई 'फ्री' वाले आयटम दिखाए और ग्राहक एक चमकदार कटोरे में अपना मुँह देखते हुए चाय–पत्ती का ब्रांड देखे बिना वहां से चल बसा।

''भाई मुझे भी कोई अच्छी सी चाय–पत्ती दे देना''–मेरा नम्बर आते ही मैं दुकानदार से बोला।

''बाबूजी आपको भी यह अच्छा वाला कटोरा दे दूं'' –दुकानदार ने हाथ में पकड़े हुए कटोरे में मेरा मुँह दिखाकर पूछा।

''नहीं भाई। मुझे 'फ्री' वाला कटोरा अच्छा नहीं, चाय पत्ती अच्छी चाहिए''– मैने 'चाय–पत्ती' पर वजन देकर कहा।

''चाय –पत्ती अच्छी ? क्या बाबूजी आप भी पुराने जमाने की बात कर रहे हो। सुबह से सैकडों ग्राहक आ चुके हैं, किसी ने भी चाय–पत्ती नहीं देखी। सभी 'फ्री' वाला आयटम देखकर चाय–पत्ती ले गये हैं और एक आप हैं, जो चाय–पत्ती देख रहे हैं। चल रे कल्लू, साहब को चाय–पत्ती दिखा''– दुकानदार ऐसे बोला जैसे अंधाश्रम वालों को चंदा देने के लिए कह रहा हो।

दुकान पर खड़े ग्राहक मुझे एक अपराधी की तरह देखने लगे। सामान खरीदकर मैं घर आया और सामान का थैला मंजू (हमारी धर्म–पत्नी) को थमा दिया। मैं पसीना पोंछने के लिये जेब से चीथड़ा निकाल ही रहा था कि मेरे कानों के पर्दे हिला देने वाली एक चीख सुनाई दी। हमारी श्रीमतीजी दहाड़ती हुई बोली– ''ये कौन सी चाय–पत्ती उठा लाये ?''

''क्यों ! कितनी अच्छी कम्पनी की चाय–पत्ती है। जानती हो यह पत्ती पांच–सितारा होटलों तक में इस्तेमाल.....''

''अरे भाड़ में जाए चाय–पत्ती और तुम्हारा पांच–सितारा होटल। मैं, चाय–पत्ती की बात नहीं कर रही बल्कि पत्ती के साथ मिलने वाले 'फ्री' वाले आयटम की बात कर रही हूं''– मंजू बीच में ही हमारी बात काटकर हमारी तरफ लपकी।

''लेकिन चाय–पत्ती का ब्रांड और क्वालिटी.....''

''फिर चाय–पत्ती। तुम बार–बार चाय–पत्ती को बीच में क्यों ले आते हो। मैं 'फ्री' वाले आयटम की बात कर रही हूं और तुम्हारी सुंई 'चाय–पत्ती' पर ही अटक जाती है''–मंजू पुनः मेरी बात काटकर ऐसे चिल्लाई जैसे मैंने प्रेस करते में उसकी 'फेरों' वाली साड़ी जला दी हो।

''लेकिन इस पत्ती के साथ भी तो एक कटोरा 'फ्री' है और पत्ती भी अच्छी है''– मैं बचाव पक्ष के वकील की तरह बोला।

''इस लोहे के कटोरे में क्या भीख, माँगने का इरादा है, और तुम ये बार–बार बीच में 'चाय–पत्ती' का जिक्र करके मुझे और गुस्सा मत दिलाओ। न जाने तुम्हें सामान खरीदना कब आएगा, या फिर मेरी किस्मत में यह सुख लिखा भी है कि नहीं। पिछले महीने भी तुमने 'फ्रिज' की कम्पनी देखकर इतना बढ़िया 'डबल–बैड़' के कम्बल का नुकसान करा दिया था और अच्छे 'फ्रिज' के चक्कर में एक चॉदी जैसा दिखने वाला लोहे का सिक्का ले आए थे। अब तुम्हें कौन समझाए। तुम तो''– हमारी श्रीमतीजी किचिन में इस तरह समाती हुई बोली जैसे एक परसेंट भी हमारे मुँह लगने के मूड में नहीं हो।

''अच्छा भाई अब शांत भी हो जाओ। अगली बार चाय–पत्ती नहीं 'फ्री वाला आयटम' देखकर ही सामान लाऊंगा– ''मैं एक आत्म–समर्पित डाकू की तरह बोला।

''हाँ। अगली बार ऊँटनी छाप चाय–पत्ती लाना, उसके साथ एक वॉकमेन फ्री है– मंजू आदेशात्मक शैली में बोली।

''लेकिन वह चाय–पत्ती तो बहुत बेकार और कड़वी.....''

''फिर चाय–पत्ती। अब मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि तुम्हें चाय–पत्ती पर बिल्कुल ध्यान नहीं देना। तुम्हें केवल 'फ्री' वाले आयटमों में तुलना करनी है, चाय–पत्तियों में नहीं। यही एक अच्छे और समझदार ग्राहक की पहचान होती है। चाय–पत्ती के डिब्बे में चाय–पत्ती तो होगी, न कि टैल्कम–पाउडर''– मंजू ऐसे समझाती हुई बोली जैसे किसी दस वर्ष के बच्चे को समझा रही हो।

मंजू के किचिन में जाते ही मैंने एक बार पुनः जेब में पड़े हुए कपड़े के चीथड़े को कष्ट दिया और टेबल पर रखा हुआ अखबार पढ़ने लगा। प्रथम पृष्ठ पर ही एक विज्ञापन पर मेरी नजरें चिपक गई, जहाँ पर मोटे–मोटे अक्षरों में खुदा हुआ था ''हमारी 'फ्री' स्कीम में शामिल होईये। चार माह तक अखबार लेने पर प्लास्टिक की एक कुर्सी 'फ्री'। पांच वर्ष तक अखबार लेने पर प्लास्टिक की दो कुर्सी एवं एक टेबल 'फ्री' और दस वर्ष तक अखबार लेने पर 'मृत्यु' दिनांक' तक अखबार 'फ्री' दिया जाएगा। साथ में एक विशेष स्कीम यह है कि हमारा अखबार, उपहार के रूप में आपकी उठावनी पर मुस्कुराता हुआ ''सचित्र उठावनी समाचार' निःशुल्क छापेगा। मृत्यु से पूर्व भी, मृत्यु के बाद भी, आपकी सेवा में सदैव तत्पर, आपका अपना अखबार। आज ही दस वर्ष की सदस्यता लेकर अगले जन्म तक लाभ उठाएं''।

''हे भगवान! हमारे देश के मीडिया की भी यह स्थिति होगी, कभी सोचा भी नहीं था। कहते हैं मीडिया चाहे तो सरकार गिरा दे''– मैं मन ही मन बुदबुदाया और अन्य खबरें चाटने लगा। एक अन्य विज्ञापन को देखकर मेरी मृगनयनी वहीं टिक गई। विज्ञापन में लिखा था– ''हमारी अनोखी स्कीम के अंतर्गत कुछ बुलडॉग, एल्सेशियन, जर्मन–शैफर्ड जैसे अच्छी जात बिरादरी के कुत्ते एवं उनके सुंदर, सुशील पिल्ले बिकाऊ हैं। इस अनोखी स्कीम में एक जर्मन शैफर्ड कुत्ता खरीदने पर एक 'डाबरमेन' कुत्ते का

पिल्ला एकदम 'फ्री'। एक डाबरमेन कुत्ता खरीदने पर 'बुलडॉग' पिल्ला एकदम 'फ्री' (पट्टे सहित) एक बुलडॉग कुत्ता खरीदने पर एक एल्शेसियन पिल्ला बिल्कुल 'फ्री'। एक एल्शेसियन कुत्ता खरीदने पर चौबीस बिस्कुट के पैकिट (कुत्तों और इंसानों दोनो के खाने वाले) एवं कुत्तों को नहलाने वाले तीन साबुन, शैम्पू की तीन बोतलें और दो टॉवल 'फ्री'।

इसके अलावा, अच्छी किस्म, जात, बिरादरी वाले कुछ समझदार, देशी कुत्ते भी बिकाऊ हैं। प्रत्येक देशी कुत्ते के साथ शैम्पू की तीस शीशी, चौबीस साबुन की बट्टी तथा एक विशेष 'सुरक्षा उपहार' के रूप में ''कुत्ते के काटने पर लगाया जाने वाला इंजेक्शन'' एकदम फ्री। स्टॉक सीमित समय के लिये है। पहले आएं, पहले पाएं। नोट–''जीरो परसेंट पर फायनेंस सुविधा भी उपलब्ध है।''

''अब तो हद कर दी आपने। चाय–पत्ती, साबुन, टी.व्ही. , फ्रिज की तरह कुत्तों पर भी स्कीम, वह भी फायनेंस सुविधा के साथ यही हाल रहा तो एक दिन आदमी भी स्कीम के अंतर्गत बिकेगा। एक आदमी के साथ एक बच्चा 'फ्री' दिया जाएगा। दुल्हन के साथ उसका भाई या बहन को शादी पर 'फ्री' दिया जाएगा। खैर, इस स्कीम में लड़का कुरूप लड़की से शादी इसलिए कर लेगा क्योंकि उसकी छोटी बहन सुंदर होगी। इस प्रकार कुरूप लड़कियों की शादी भी आसानी से हो जाएगी।(इस व्यंग्य को पढ़कर शायद मैरिज ब्यूरो वाले हरकत में आ भी जाएं)''– मैं विज्ञापनों के बीच में छपी अन्य खबरों को पढ़ने लगा।

''अरे श्रीवास्तव जी घर पर हैं क्या''– दरवाजे के दूसरी ओर से किसी ने आवाज़ लगाई।

''कौन है भाई । लेनदार हो तो दो–चार महीने बाद आना। अभी हाथ बहुत तंग है''– मैं कुर्सी पर बैठे–बैठे ही बोला।
''सर मैं हूं खान''– बाहर से आवाज आई।
''कौन खान। सलमान खान, आमीर खान या शाहरूख खान''– मैं उसकी बात काटते हुए बोला।

''नहीं सरजी। मैं अकबर खान हूँ। 'फ्री' वाले बहुत से अच्छे आयटमों की स्कीम लाया हूँ– वह 'अच्छे आयटमों' एवं 'फ्री वाले' पर सीमा से अधिक वजन डालते हुए बोला।

''अरे तो कहीं और जाकर बेचो न। क्यों विरोधी पार्टी की तरह सत्ता पक्ष के दरवाजे पर धरना दिये दे रहे हो''– मैं उसे जल्दी भगाने के उद्देश्य से बोला।

''सरजी। सामान नही देखना तो मत देखो लेकिन एक बार सामान के साथ 'फ्री' में मिलने वाले आयटम तो देख लो। बहुत अच्छे है''– वह मुझे दाना फेंकते हुए बोला।

''क्या। फ्री वाले आयटम बहुत अच्छे है''– इतना कहकर हमारी श्रीमती जी पल भर में ही आंगन फाँदकर दहलीज पार कर गई।

दस मिनट बाद वह हमारी जेब से हजार रुपए निकालकर ले गई। हमने टोका, रोका, पूछा तो बोली– ''यह देखो इलैक्ट्रिक प्रेस, यह चम्मच का सैट, यह चाकुओं का सैट, यह चमकदार स्टील का जग, यह वॉकमैन। सबके सब एकदम 'फ्री' हैं, सामान के साथ।

वह तो ठीक है भाग्यवान, लेकिन ये आयटम है किस–किसके साथ 'फ्री'– मैं तनिक गुस्से में बोला।

''वे मैंने अभी देखे नहीं हैं, बाहर जाकर देखती हूँ''– इतना कहकर वह मेरे हाथ से छूट गई।

दो मिनट बाद ही हमारी श्रीमती जी ने घर में कई डिब्बों के साथ प्रवेश किया। वाकई उस बेचारी ने सामान के आयटम खुद नहीं देखे थे, तो हमें कैसे बताती। उसने हमारे सामने सब डिब्बे खोल–खोलकर, आयटम देखे। वो बात अलग है कि उनमें एक सामान भी ऐसा नहीं था, जो पहले से ही हमारे घर में न हो, लेकिन हमारी श्रीमती मंजू 'फ्री' वाले आयटमों को देख–देखकर ऐसे हवा में उड़ रही थीं, जैसे मौसम विभाग का गुब्बारा।

हमसे नजरें मिलते ही बोली–''अब भी कुछ समझे कि नहीं''। ऐसे खरीदा जाता है सामान। मुझे लगता है कि अब सामान खरीदने की जिम्मेदारी मुझे ही अपने ऊपर लेनी पड़ेगी। तुम्हें तो सामान खरीदना बिल्कुल भी नहीं आता तुम तो आज भी उसे भगाए दे रहे थे।''

''लेकिन तुमने जो सामान खरीदा है। वह सभी हमारे घर में पहले से ही.....''

''फिर सामान। अरे मैं सामान की नहीं सामान के साथ मिलने वाले 'फ्री' आयटम की बात कर रही हूं। मेरे इतने समझाने पर भी एक छोटी सी बात तुम्हें समझ में नहीं आती।''

हमारी श्रीमतीजी बोले जा रहीं थी और मैं बाहर की दीवार पर ऑयल पेंट कलर से लिख रहा था–''सामान के साथ 'फ्री' आयटम देने वाले विक्रेता सौ गज की दूरी से निकलें।''

व्यंग्यकार
जे.जे. श्री वास्तव
साई कृपा, बी–13,
नितिन नगर, घाटी पुर
ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

नयी सदी में प्रेमचंद

प्रेमचंद ने बीसवीं सदी की एकदम शुरूआत में लिखना आरंभ किया था। सन् 1936 ई0 तक उनकी लेखनी अबाध गति से चली। इसी वर्ष उम्र के छठे दशक में, वे जीवन लीला समाप्त होने पर इस दुनिया से विदा हो गये। बहुत कम समय मिला उन्हें जीने और लिखने के लिए। बावजूद इसके, विरासत के रूप में हिंदी, उर्दू, हिन्दुस्तानी को अपना कहा, लिखा, जो कुछ दे गये, नयी सदी के बहुत बदले हुए समय संदर्भ में भी वह हमारे लिए बेहद महत्वपूर्ण, बेहद जरूरी और बेहद मूल्यवान है। जरूरत है, गत सदी के उस सारे परिदृश्य से गुजरते हुए, जिससे प्रेमचंद रू–ब–रू थे, समय के जिस दौर को वे नहीं पा सके और नयी सदी का जो परिदृश्य हमारे सामने अपनी बहुत कठिन चुनौतियों के साथ मौजूद हैं। इन सबके संदर्भ में उनके कहे लिखे को हम एक बार फिर से पढ़ें और समझें। कहने की जरूरत नहीं कि तभी हम समझ सकेगें कि जो इबारत अपने समय में हमारे और हमारे समय के लिए वे लिख गये, सचमुच वह अब भी कितनी अर्थवान और प्रेरक हैं। जरूरत इसलिए भी है कि हम प्रेमचंद को नयी सदी में, नयी सदी के बदले संदर्भ में भी अपने समकालीन रूप में देखते और स्वीकार करते हैं। एक अतीत, या पूर्ववर्ती लेखक के रूप में नहीं।

जर्मन आलोचक राबर्ट वाइमान ने कभी शेक्सपियर पर लिखते हुए क्लासिक को, किसी बड़े लेखक को, पहचानने का एक सूत्र दिया था। क्लासिक या महान लेखक वह होता है जो अपने विगत के महत्व को बरकरार रखते हुए वर्तमान में भी हमारे लिए उतना ही अर्थवान हो। उनका सूत्र था Past Significance and Present Meaningfulness अर्थात विगत की महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता। उनके अनुसार विगत की महत्ता और वर्तमान की अर्थवत्ता के बीच जितना तनाव होगा, लेखक का बड़प्पन उतना ही भास्वर होकर सामने आएगा। हम समझते हैं कि प्रेमचंद में हमें क्लासिक की यह पहचान मिलती है।

प्रेमचंद के कहे लिखे की वर्तमान अर्थवत्ता यह है कि नयी सदी में, ठेठ अपने समकालीन होने की बात पर विचार करने के पहले जरूरी है कि हम इस बात का संक्षिप्त जायजा लें, कि अपने समय से जूझते हुए प्रेमचंद ने कथा साहित्य को, हिंदी भाषा और हिंदी जगत को विरासत के रूप में क्या दिया।

हम जानते हैं कि अपने पूर्ववर्तियों से, कथा के क्षेत्र में, प्रेमचंद को कोई ऐसी महत्वपूर्ण विरासत नहीं मिली थी, रचना तथा विचार की अपनी यात्रा में जिसे वे अपना संबल बनाते, उसे और भी सम्पन्न और समृद्ध करते। प्रेमचंद उर्दू से हिंदी में आये थे। उर्दू फारसी में भी रोमांच और तिलस्म के कुछ अफसानों के अलावा जिनसे वे बखूबी परिचित थे, ऐसा कुछ न था, जो उनकी प्रेरणा का स्रोत बनता। हिंदी में भी तिलस्म और रोमांस की, बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा प्रवर्तित या तो ऐसी परंपरा थी, या नीति और शिक्षा की कुछ कथात्मक कृतियाँ। प्रेमचंद के अपने रचनात्मक सरोकार और संकल्प कुछ दूसरी तरह के थे, जिनमें रंग, रस, रोमांस के ये तिलस्मी अफसाने या नीति का उपदेश देने वाली दूसरी कथाकृतियाँ आ पातीं। बंगला में जरूर कुछ लिखा गया था, बकिम चंद के रोमांसों के अलावा । वहां रवींद्रनाथ और शरत चंद्र जैसे विख्यात लेखक थे। प्रेमचंद जिनके महत्व और लेखन से भली भांति परिचित थे।

प्रेमचंद के लिए यह निर्णय का क्षण था। रचना उनके लिए शुगल नहीं थी। साहित्य को लेकर उनकी धारणाएँ बहुत ऊंची थी और कलम उन्होंने एक खास सोच और खास मकसद से अपने हाथ में पकड़ी थी। उनके सामने हिंदी क्षेत्र का विशाल समाज था जो जहालत और दरिद्रता में आंकठ डूबा हुआ, सांमती संस्कारों से बोझिल, रूढ़ि–जर्जर, कुंद! वे इस समाज में हस्तक्षेप करना चाहते थे कठोर

होकर। उसकी समस्याओं से जूझना चाहते थे। उनकी सामने एक स्वाधीनता संग्राम था। देश की गुलामी थी। वे इस स्वाधीनता संग्राम में भी शिरकत करना चाहते थे। यश और धन उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं था, अपने रचनात्मक संकल्पों के अनुरूप साधना के पथ पर आगे बढ़ना, भले ही वह कितना भी कष्टसाध्य क्यों न हो।

इसे हिंदी कथा साहित्य और हिंदी जगत का सौभाग्य मानना चाहिए कि निर्णय के क्षणों में चूके नहीं। इस नये रास्ते की कठिनाइयों से उलझे टकराये परंतु हताश नहीं हुए। विचारों की जो भी पूंजी उनके पास थी, अनुभवों की जो भी सम्पदा अब तक पायी कमायी थी, उसमें बरकत और गुणात्मक इजाफा करते, उपन्यास और कहानियों, विचारात्मक आलेखों, सम्पादकीय वक्तव्यों आदि के रूप में हिंदी जगत और हिंदी कथा साहित्य को जो कुछ दिया, वह अपने में बेमिसाल तो बना ही, समूचे भारतीय कथा साहित्य में एक बृहतर देन के रूप में पहचाना और स्वीकार किया गया।

उन्होंने महत्वपूर्ण रचनाएँ ही हमें नहीं दी, हिंदी क्षेत्र के एक विशाल पाठक समाज की साहित्यिक सांस्कृतिक अभिरूचिओं का परिष्कार भी किया। उन्हें अपनी सेवा–सदन, निर्मला, गबन और गोदान जैसी रचनाओं का पाठक बनाया। उपन्यास को किस्सागोई और शिक्षा तथा नीति के शुष्क आख्यान से निकालकर, एक समुन्नत धरातल पर लाते हुए मानव चरित्र के चित्र के रूप में प्रतिष्ठा दी, साहित्य की सोद्देश्य रचनाशीलता के लिए रास्ता तैयार किया। ग्रामधर्मी, कथा परंपरा का प्रवर्तन किया। साहित्य को साधारण जन की पक्षधरता से जोड़ा। धन जरूर वे नहीं कमा सके, जिसकी उन्हें जरूरत थी, परंतु यश जरूर कमाया, ऐसा यश जो बिरलों को ही मिला करता है।

स्वाधीनता आंदोलन में भागीदारी, औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति, आर्थिक, सामाजिक वैषम्य से जकड़े हुए समाज का संस्कार, ग्रामों के महादेश भारत की हकीकत को पहचानते हुए सामंती जकड़बंदी से किसान, भारत की सामाजिक संरचना में अंतनिर्हित भेदभावपूर्ण मानसिकता के प्रतिनिधि धर्मशस्त्रों द्वारा औरत और दलित समाज को दिये गये नरक से औरत और दलितों की मुक्ति उनके बुनियादी रचनात्मक सरोकार बने और उन्होंने पूरी लेखकीय पक्षधरता के साथ इन सरोकारों के लिए अपने को और अपनी कलम को समर्पित कर दिया।

बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे पत्र में उन्होंने कहा था कि उनकी अभिलाषाएँ बहुत सीमित हैं। उन्हें कुछ भी नहीं चाहिए। वे इतना चाहते हैं कि वे कुछ लिखें। उनके उपन्यासों तथा कहानियों में भारत का यह स्वाधीनता संग्राम अपने प्रशस्त रूप में अपने सारे आयामों के साथ लिपिबद्ध है। मात्र राजनीतिक सत्ता के हस्तांतरण को, विदेशी शासकों के हाथों से सत्ता के देशी शासको के हाथों में आने को, वे स्वाधीनता नहीं मानते थे। उनके लिए राजसत्ता थी बागडोर का जॉन के हाथों से गोविंद के हाथों में आना भर था। उनकी मान्यता यह थी कि वास्तविक स्वतंत्रता वह है जिसमें साधारण जनता की आर्थिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता भी निहित हो। यदि देश का किसान दुःखी है, सामाजिक गैर बराबरी है, आर्थिक विषमता है, सामंती संस्कारों का लोगों के दिमाग में वर्चस्व है, औरत और दलित अपने जायज अधिकारों से वंचित है, तो कैसी स्वतंत्रता? वह चाहते थे कि लड़ाई राजनीति के मोर्चे के अलावा सामाजिक, आर्थिक मोर्चे पर भी चले, उपनिवेशवाद के खिलाफ ही नहीं सामंतवाद और पूंजीवाद के खिलाफ भी हो। जनता के आर्थिक सामाजिक हित से जुड़े मुद्दे भी उसका अभिन्न हिस्सा बने। उन्होंने अपने लेखों, सम्पादकीय वक्तव्यों और रचनाओं के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम के कर्णधारों को बराबर आगाह किया। उन्हें आशंका थी कि आजादी के बाद ये नेता जनता के सुख–दुख से उदासीन, कहीं आरामतलबी की जिंदगी न जीने लगें।

प्रेमचंद गुलाम भारत में पैदा हुए थे, गुलाम भारत में उन्होंने अपनी आखें मूँद ली। कालांतर में देश को स्वतंत्रता मिली, जाहिर हैं कि वह उनकी परिकल्पना की स्वतंत्रता नहीं थी। जॉन की जगह जर्नादन का गददी पर बैठना भर था। 'समर यात्रा' उनका आखिरी कहानी संकलन है, जिसका संबंध स्वाधीनता आदोलन से है। इस प्रकार देखा

जाए तो भारत का स्वाधीनता आदोलन ही प्रेमचंद के रचना कर्म में, आदि से अंत तक सजीव रूप में विद्यमान है।

हर विचारशील इंसान की तरह प्रेमचंद भी आजीवन दो मोर्चों पर संघर्षरत रहे। एक ओर बाहरी जीवन की परिस्थितियों से, दूसरी ओर गहराई में, अपने भीतर अपने से ही बाह्य और आत्म संघर्ष का यह क्रम बराबर चलता रहा। इसके गहरे निशान प्रेमचंद के जीवन, उनकी सोच और उनकी रचनाओं में देखे जा सकते हैं।

प्रेमचंद की, उनके रचनाकाल (जो विगत हो चुका है) आज हमारे लिए यही महत्ता है। परंतु जैसा हमने आरंभ में कहा है कि प्रेमचंद विगत महत्व के साथ–साथ हमारे समकालीन भी है। जरूरी है उनकी वर्तमान अर्थवत्ता पर भी कुछ कहें जिसके नाते वे हमारे समकालीन हैं।

नयी सदी के साहित्यिक विमर्श में स्त्री और दलितों के स्वत्व से जुड़े सवालों का केन्द्र में होना साबित करता है कि प्रेमचंद अभी भी अपनी पूरी हकीकत में हमारे बीच है। अपने समय में वे किसान के साथ–साथ स्त्री और दलितों के पक्षधर होकर सामने आये थे। वे औरत की सामाजिक अस्मिता की बहाली चाहते थे। उसे आत्मनिर्भर देखना चाहते थे और दलितों के अधिकारों के लिए भी वे उतने ही संकल्पबद्ध थे। औरतों और दलितों का नरक (जिसे प्रेमचंद हमेशा के लिए समाप्त करना चाहते थे) अपने पूरे रोमांच में आज भी उनके जीवन की सच्चाई बना हुआ है। यह सब साक्ष्य है कि प्रेमचंद आज भी अपने पूरे वजूद में हमारे बीच हैं।

प्रेमचंद अपने समय में भी सही मायने में एक आधुनिक लेखक के रूप में अपनी पहचान कराते हैं। आधुनिक वह नहीं होता, जो आधुनिक समय में जीता और लिखता है। हमारे समय में जीने और लिखने वाले अधिकांश साहित्यकार आधुनिक समय में भी मध्यकालीन मानसिकता को लिये हुए जीते और लिखते हैं। ऐसे लोग हमारे समय में होकर भी उसके नहीं है। प्रेमचंद इसलिए आधुनिक हैं कि वे अपने समय की समस्याओं के लिए समाधान ढूँढ़ने न वेदों में जाते हैं, न पुराणों में, न दर्शन में जाते हैं, न इतिहास में, वे अपने समय की समस्याओं का समाधान समय के बीच से ही लाते और ढूँढ़ते हैं आने वाले समय को वे मजदूर–किसानों का समय घोषित करते हैं वे न राम–राज्य में पनाह लेते हैं और न ही गीता में। वे अपने समय से मुखातिब होते हैं उसी में जीते और संघर्ष करते हैं। वे हमारे समय के कबीर के बाद सबसे धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति हैं। उनके यहॉ आदमियत की शिनाख्त उसकी आदमियत के पैमाने पर है, उसके वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के आधार पर नहीं। वे अपने को न हिन्दू, न मुसलमान कहते हैं। हिन्दू मुसलमान दोनों के घरों में आसानी से पहुँचते हैं। उनके बीच के उम्दा चरित्र हमारे सामने लाते हैं और अधम चरित्र भी। बिना किसी भेदभाव के वे दोनों से अपना नाता जोड़ते हैं। कहना न होगा कि उनके बाद से हिंदी के साथ लेखक हिन्दु पात्रों को सामने लाते हैं और मुसलमान लेखक मुसलमान पात्रों को। हिंदी क्षेत्र में सांझा संस्कृति जिसके प्रेमचंद प्रतीक थे, अब लुप्त हो रही है। ये कुछ मुददे हैं जो नयी सदी में प्रेमचंद को हमारा समकालीन बनाते हैं। प्रेमचंद हिंदी के गौरव हैं, हमारे रचना धर्म की प्रेरणा के अजस्त्र स्त्रोत।

पी.आर.वासुदेवन,
हिंदी अधिकारी,
कार्यालय महालेखकार
(वाणिज्यिक एवं प्राप्ति लेखा परीक्षा)
361, अण्णासालै चेन्नै–600018
तमिलनाडु

भ्रम – भंग

(लघु नाटक)

पात्र परिचयः

1. शेफाली – नवयुवती नायिका,

2. माँ – शेफाली की माँ,

3. मुनीश – शेफाली का सहकर्मी। नायक ?

('पर्दा', एक साधारण, निम्न मध्यम वर्गीय, सुरुचिपूर्ण ढंग से किफायत पूर्वक सज्जित 'ड्राईंगरुम' में, खुलता है। सामने दीवार मे दाईं ओर एक दरवाजा और बाईं ओर एक खिड़की नज़र आ रही है।

खिड़की पर पर्दा पड़ा है, झिरी से बाहर का थोड़ा सा प्रकाश झांक रहा है, वरना कमरे में रोशनी के नाम पर करीब–करीब अंधेरा है।

बाईं ओर कमरे के बीच में दीवार से सटी, मेजपोश सज्जित छोटी सी 'डाइनिंग टेबल' लगी है। मेज पर 'एक फूलदान' और एक मोमबत्ती 'स्टैंड' भी रखा है।

सभी कुर्सियां 'टेबल' के नीचे घुसी हैं, केवल एक पर, खिड़की की ओर पीठ किये एक 40–45 वर्षीय, सफेद पर गहरे नीले रंग के प्रिंट से सजी साड़ी और सफेद ही ब्लाउज पहने, महिला बैठी है।

महिला अभी भी देखने में खासी सुन्दर लगती है जैसे किसी बहुत अच्छे खानदान से संबंध रखती हो। दोनों हाथ सिर पर धरे शून्य की ओर ताक रही है।

मंच के सामने की ओर, 'डाइनिंग टेबल' से पहले रसोई घर का बंद दरवाजा है। दाईं ओर दीवार के साथ तीन व्यक्तियों के बैठने वाला और सामने दरवाजे की ओर पीठ किये एक व्यक्ति के बैठने का सोफा पड़ा है। बीच में एक छोटी परन्तु सुन्दर मेज रखी है, मेजपोश बिछा है और ऊपर एक पत्रिका सी पड़ी है।

दरवाजे की घंटी बजती है, महिला सिर घुमा कर पीछे पर्दे की झिरी से कुछ देख कर थोड़ा मुह बना कर यथावत् बैठी रहती है, उठने की चेष्टा किये बगैर।

पीछे का दरवाजा खुलता है। करीब–करीब अंधेरे में डूबा कमरा क्षण मात्र को बाहर दिन की रोशनी से चकाचौंध सा हो कर दरवाजा बंद होते ही यथावत् हो जाता है।

दरवाजा खोलकर अंदर आई करीब 20–22 वर्षीय नवयुवती अत्यंत सुन्दरी ना होते हुए भी काफी सुशील और समझदार दीखती है। सुन्दर मैचिंग साड़ी–ब्लाउज पहने हैं, पीछे एक चोटी, कंधे पर लटकता पर्स और हाथ में बंद छाता भी है।)

दरवाजे की ओर पीठ किये छोटे 'सिंगल' सोफे की ओर आकर.....

शेफाली : माँ! ..... ओ माँ! कहाँ हो? लो मैं आ गयी (कहती अंधेरे में इधर–उधर ताकती है)

माँ : ठीक है! मैं यहाँ हूँ ..... (शेफाली दाईं ओर की दीवार से बटन दबा कर रोशनी कर देती है)

शेफाली : मैं समझी आप अंदर हो, (रूक कर) पर आप अंधेरे में क्यों बैठी हो ? कुछ परेशानी है, क्या आज फिर ?

माँ : परेशानियों का खात्मा भी कभी हुआ है क्या? तुझे उससे क्या ? बैठ।

शेफाली : (बीच की मेज पर छाता पर्स इत्यादि रखते हुए) मुझे उससे कुछ नहीं तो और किसे होगा भला ! ..... आज फिर क्या हो गया ?

माँ : (घूरते हुए) शेफाली! तेरे नसीब में जरा भी सुख नहीं लिखा क्या ?..... जिन्दगी भर तू अपने इस गरूर की मारी रहेगी..... लगता है तेरा ये गरूर तेरी चिता के साथ ही जल कर भस्म होगा। ....

शेफाली : (बात काटते हुए हतप्रभ सी) पर..... माँ आखिर मैंने ऐसा आज क्या कर दिया। पता भी तो चले!

माँ : ..... जात–पात में तेरा विश्वास नहीं.... ना सही। छोटे–बड़े में तुझे भेद नहीं..... वह भी ठीक है..... लेकिन शादी करके सुख से जिन्दगी बसर करने में तेरी सांसें क्यों उखड़ती हैं..... मेरी समझ में कतई यह बात नहीं आती! तेरी बात मेरी समझ में कुछ नहीं आती! .....

शेफाली : (कुछ उखड़ी सी) भला इसमें ऐसी समझ में ना आने वाली क्या बात है.....

माँ : (बात काटती) अच्छा भला लड़का है..... जवान उच्च कुल का..... तुझे शादी करनी है या नहीं? सिर्फ हां या ना में जवाब दे, बस! .. .. तुझे शादी करनी है या नहीं ?

शेफाली : (एक क्षण मौन रहकर) अभी नहीं! ..... अम्मा तुम क्या मुझसे इतनी तंग हो?..... तंग हो तो मैं कुछ दिन के लिये यहाँ से कहीं चली जाती हूँ (कह कर पास के सोफे पर धम्म से बैठ जाती है) ठीक तरह से घर में तो घुसने दिया होता!

माँ : फिर अभी नहीं! मैं पूछती हूं, फिर कब ? अब क्या कसर रह गयी? (सांस लेने को रूक जाती है) ऊपर से धमकी! (नकल उतारते हुए) ''तंग हो? कहीं चली जाती हूं!''..... अब यही कसर रह गयी है, कहीं चले जाने की। ..... बच्चों की रेलपेल लगी है ना इस घर में जो अब इस इकलौती धींगड़ी को कहीं भेजकर मैं सुखी होऊँगी भला! यहाँ जगह की कमी पड़ रही है ना! (रुक कर शेफाली की ओर ताकती है) जहां भेजना चाहती हूं, वहां जाती नहीं है.....।

शेफाली : माँ आते ही कुछ देर बैठने तो दिया होता। मैं कहीं भाग तो नहीं चली थी, तुम्हारी रामायण सुनने से पहले (परेशानी से दोनों कनपटियों पर हाथ है, जैसे कि सिर दर्द हो) आज फिर क्या हुआ ?

(उठ कर खड़ी हो जाती है) वो फिर आये थे क्या? (कुर्सी के पीछे से माँ के दोनो कंधे पकड़ लेती है) यदि उसने मुझसे कुछ कहना था, तो मुझे आफिस में भी तो कह सकता था! तुमसे आकर फिर कहना क्या आवश्यक था?

माँ : (शेफाली के हाथ झटक कर उठ खड़ी होती है) क्या कहा? कह सकता था! (तैश में पूरी काँप रही है) कुछ तो शर्म कर! थोड़े आदर से तो बोल सकती है। कितने अहसान हैं, उनके हम पर ?

शेफाली : (माँ के ठीक सामने जा खड़ी होती है, दोनो हाथ कमर पर धरे हैं) माँ बचपन से आज

तक आपने मुझे कब भूलने दिया है कि..... .... वो परिवार, मेहरा अंकल, उनका पैसा, उनका अनमोल बेटा आदि सभी कितने महान हैं! ..... सिवाय मेरे और आपके, पर आदर तो आदरणीय को ही दिया जाता.....
(माँ बीच में ही बात काट देती है)

माँ : निर्लज्ज! बेहया! बेटे को छोड़ बाप तक भी पहुंच गयी..... यदि यही मेहरा अंकल ना होते तो जाने हम.....

शेफाली : (बात काटकर जैसे फुंकार रही हो) मैं बात पूरी करती हूं, यदि अंकल ना होते तो (जैसे मुंह चिढ़ा रही हो) हम जाने कहाँ होते, शायद (ऊपर की ओर इशारा कर) वहाँ पापा के पास होते, स्वच्छ सुखी परिवार की तरह (आंखें भर आयी हैं) मैं..... आपको सैकड़ो बार याद दिला चुकी हूं कि मेहरा जी से यदि आपका कभी कुछ संबंध यदि था भी तो, वो मेहरा जी की प्रारंभिक बेवफायी और मेरे पापा के साथ आपके विवाहोपरांत, कभी का चुक गया..... मेरे पापा जा चुके हैं! ..... मेहरा जी केवल अंकल है मेरे पापा नहीं है!
(माँ एकाएक आगे बढ कर शेफाली के गाल पर एक थप्पड़ रसीद कर देती है और शेफाली एक क्षण हतप्रभ सी खड़ी रह कर दानों हाथों से मुँह ढाप लेती है)

माँ : संबंध क्या यू ही समाप्त हो जाते हैं! ..... चुक जाते हैं?..... तेरे पापा हमें सड़क पर छोड़ गए थे अपनी बीमारी की वजह से..... यदि ये ना होते तो जाने क्या करता होता?.....

शेफाली : (व्यंग्य से मुंह उठा कर) यदि संभालना ही था तो पहले धोखा क्यों दिया था, आपको! ..... तब क्यों नहीं सोंचा था कि अकेली औरत इतने बड़े समाज का सामना भला कैसे करेगी?..... बाद में संभालने का क्या? भलमानसता और महानता के मुखौटे के पीछे से स्वयं का अपराध बोध भी तो लगातार कचोटता ही होगा..... उसे भी तो शांत करना था ना! धोखेबाज! धोखा तो इनकी.....

माँ : (व्यंग्य से बात काटती है) धोखा, उनका क्या? जो कुछ बाकी है वो भी अपनी विषाक्त जुबान से उगल डाल, आज कुछ शेष ना रह जाय। किसी तरह बात समाप्त तो हो! ..... बता दे और जो कुछ बाकी रह गया हो वो भी!

शेफाली : क्या करोगी जान कर, अब! यदि बताना ही होता तो पांच वर्षों पूर्व ही बताया होता! (बड़े निस्पृह भाव से)..... अब क्या फायदा! तुम्हें ना तब विश्वास आता और ना अब आयेगा। क्या फायदा? (मुँह पीछे की ओर मोड़ लेती है)

माँ : देखो तो इस लड़की की अकल को (कुछ पछतावे और क्रोध को कम करने की मुद्रा में) मैं इसकी बात पर नहीं तो किसकी बात पर विश्वास करूंगी भला! (शेफाली का मुँह अपनी ओर घुमाते हुए) लड़की! तूने अपनी माँ का कलेजा नहीं देखा अभी! दाग दे जो कुछ और मेरे जानने से शेष रह गया है।

शेफाली : (मरी हुई सी आवाज में) जाने दो माँ.... जब भ्रम टूटते हैं तो अचानक सारी बुनियादें हिल जाती हैं। ..... सभी के समान आपको भी तो जीने के बहाने चाहिए ना, बेशक झूठ ही सही। ..... मैं क्यों आपके विश्वास को आघात पहुंचा कर पाप की भागी बनूँ?

माँ : (पास आकर शेफाली को बाहों में भर लेती

है) लड़की! माँ के धीरज का इम्तहान ना ले! साफ कह, मुझमें सब कुछ सहने की शक्ति है (आंसू पोछती है) बता 'शेफू' पांच वर्षों तक ऐसा मुझसे क्या छुपा रखा है जिसे सुन कर मेरा कलेजा फट जायेगा ?

शेफाली : जाने दो ना माँ! कुरेदने से क्या फायदा ? (माँ के आलिंगन से, कसमसाती शेफाली, बाहर आने का असफल प्रयास कर अंततः एक लंबी सांस भर कर, निढाल माँ के कंधे पर सिर टिका देती है)

माँ : ना बेटा! आज नहीं। मैं भला कैसे बर्दाश्त करुं कि मेरी बेटी पांच वर्षों से कुछ छुपाये परेशान है, मन ही मन घुटती रही है और मैं पूर्णतया अनभिज्ञ रही हूं, लानत है मुझे पर! बता क्या बात है?

शेफाली : (हिचकती रुक–रुक कर) माँ! ..... आपको याद है..... एक बार आपने काफी देर बाद आने को कहा था परन्तु दोपहर में अचानक जल्दी लौट आयी थीं, (मुह माँ के कंधे से उठा कर अपनी बांह माँ के कंधों पर लपेट देती है जैसे सहारा दिये हो)..... आपने मुझे अत्यधिक अस्त–व्यस्त अवस्था में पाया था और कोई पीछे की खिड़की से कूद कर भाग गया था..... (बात कट जाती है)

माँ : उस घटना का जिक्र! अब क्यों भला?..... कौन था जो भाग गया था? ..... तूने तो कहा था कि तू देख नहीं पायी थी! (शेफाली की बांह कंधे से झटक कर झंझोड़ देती है) बता कौन था? डर मत! मैं तेरी बात पर..... अपनी बेटी की बात पर कैसे शक कर सकती हूं!

शेफाली : माँ क्या नाम बताना अब भी आवश्यक है? क्या यही काफी नहीं है कि मुझे मालूम था परन्तु मैंने ना बताना ही श्रेयस्कर जाना। (क्षण मात्र को माँ स्तब्ध खड़ी रह कर फिर शेफाली को झंझोड़ देती है।)

माँ : शेफू! मुझे जीते जी मत मार, बता!

शेफाली : (अनिर्णीत सी, मरी जुबान से) आप मानोगी नहीं! तो सुन ही लो..... आपके चहेते 'मेहरा साहब' (विद्रूपता से माँ की ओर देखती है) अब चाहो तो दुबारा भी थप्पड़ मार सकती हो..... आपका हक है!
(एक क्षण माँ दो कदम आगे बढ़ाती है जैसे शेफाली को रास्ते से धक्का मार कर हटा देना चाहती हो, फिर हताशा से ऊपर उठे हाथ स्वतः नीचे गिर जाते हैं और माँ स्वयं कुर्सी पर गिर कर हाथों से मुह छुपा लेती है। सिसकियाँ कमरे में गूंज जाती हैं)

माँ : 'दैट रैट!' (THAT RAT) (मुँह ढके ही ढके) बेटा! आज मुझसे कहीं, भविष्य में किसी और से कभी ना कहना, लोग तुम्हें ही दोष देंगे। ..... तभी उस घटना के पश्चात काफी समय तक वो निर्लज्ज मुझसे आंखे बचाता फिरता था..... (भर्रायी आवाज में) कैसी विडंबना है!..... जिस व्यक्ति को मैं तुम्हारी दृष्टि में ऊपर उठाने का अनर्थक प्रयास करते–करते हार गयी..... वो व्यक्ति! ..... वो पहले ही इतना नीचे गिरा हुआ था! .....(चेहरे से हाथ हटा कर पीछे मुड़ कर) तुम मुझ पर हंसती तो होंगी बेटा?

शेफाली : माँ! मेरी भोली माँ! मैं आपका भला क्या करुं (पीछे से आकर कुर्सी समेत माँ को आलिंगन बद्ध कर लेती है) कृतघ्न मैं भी नहीं हूं माँ, परन्तु उस पितृ तुल्य व्यक्ति ने तुम्हारी

अनुपस्थिति में मुझसे बदसूलीकी करनी चाही. .....

माँ : (बात काटती) बेटा! मुझे माफ कर दे, प्लीज! (कहती नीचे झुकती है जैसे शेफाली के पैर पकड़ लेगी)

शेफाली : क्या करती हो माँ! (बीच में ही रोक लेती है) आप कहती हो मैं शादी से डरती हूं, नहीं! ..... सुख से जिन्दगी बसर करने में मेरी सांसें रुकती हैं..... वो भी नहीं! सांसें रुकती हैं मेरी, उस व्यक्ति के दो मुहे गिरगिटी व्यक्तित्व से। ..... जाने अपने पुत्र से मेरा विवाह कर हमसे कौनसा बदला निकालना चाहता है?..... बहुत अच्छा, निहायत शरीफ होने के बावजूद भी मैं भला उनके सुपुत्र से कैसे विवाह रचा लूं?.....

माँ : (शेफाली के मुंह पर हाथ रख) बस! लड़की बस! इस अध्याय की यहीं इति कर छोड़। ..... रखे वो अपना उच्च कुल अपने पास.... ...रखे अपना अनमोल सुपुत्र अपने पास..... बस बात समाप्त। (आंचल से आंसू पोंछ, शेफाली का सिर सहलाती है) आते ही बच्चे को हलकान कर छोड़ा मैंने..... तू बैठ बेटा! आज दिन ही खराब चढ़ा है शायद। मैं तेरे लिये कुछ चाय नाश्ता लाती हूं।

(सामने की ओर आकर रसोई घर में चली जाती है। बाहर से अचानक लोहे की जाली पर टन–टन की आवाज आती है)

माँ : शेफाली! अरे देख तो कौन है? (रसोई के अंदर से ही केवल आवाज)

शेफाली : (उठती हुई) देखती हूं माँ, (दरवाजा खोलती है। सामने एक 24–25 वर्षीय, सुन्दर कदकाठी का सुसंस्कृत, शांत गंभीर नवयुवक खड़ा है, शेफाली दो कदम पीछे हट जाती है फिर)

शेफाली : तुम! तुम यहाँ? भाग जाओ, माँ देखेगी तो क्या कहेगी! (युवक टस से मस न होकर दरवाजे के बीच खड़ा मुस्कुराता रहता है। शेफाली हाथ जोड़ती है) 'प्लीज!' जाओ ना।

मुनीश : अंदर आने को नहीं कहोगी? (हाथ से अंदर आने का इशारा करता है)

माँ : (रसोई से ही) अरे बेटा! कौन है?

शेफाली : माँ वो है (नवयुवक को भाग जाने का इशारा करते हुए) बेशरम हो पक्के! मुझे पिटवाओगे! ..... माँ वो मुनीश है!

माँ : कौन बेशरम है? किससे बात कर रही है? (ट्रे में कुछ खाने पीने की चीजें हाथ में लिये प्रवेश करती है) मुनीश कौन भला?

शेफाली : माँ ये (मुनीश की ओर इंगित कर) मेरे दफ्तर में काम करते हैं। मुझसे दो ग्रेड ऊपर हैं, ये..... (मुनीश बात काट देता है)

मुनीश : माँ! आपके चरण कहाँ है? नजर नहीं आ रहे (झुक कर पैर छूता है) यदि जरा सी भी देर हो गयी तो सब चौपट हो जायेगा, सारी हिम्मत धरी की धरी रह जायेगी।
(झपट कर शेफाली का हाथ थाम लेता है। वो हाथ छुड़ाने का असफल प्रयास करती है। माँ हक्की बक्की सी देख रही है)
माँ! मेरा इस संसार में कोई नहीं है। दस हजार रुपये वेतन पाता हूं ..... गांव में

मकान दुकान सभी कुछ है, परन्तु देखने वाला कोई नहीं है..... और (दुबारा पैर छूता है) आप मुझे अपना बेटा बना लो, बस! अब मैं जाता हूं। बाकी आपको आपकी बेटी बता देगी! (झपट कर दरवाजे से बाहर निकल जाता है, माँ रोकने की मुद्रा में हाथ उठाये हतप्रभ खड़ी रह जाती है)

माँ : शेफाली! ये क्या था?

शेफाली : (मुस्कुराती हुई) माँ ये तूफान!..... मेरा मतलब मुनीश, मुझे अपना आगा पीछा सभी कुछ भुलाकर मुझे मेरे पैरों से उखाड़ फेंकना चाहता है! ..... मेरी एक नही सुनता! और आज..... (माँ की ओर देख शर्मा जाती है)

माँ : और आज! आज यह तूफान, तेरे मना करने के बावजूद भी तेरे घर में घुस आया है (मुस्कुराती है) तुझे पसंद है बेटा?
(शेफाली की ठोड़ी पकड़ कर उसका मुंह ऊपर करती है परन्तु शेफाली मुँह उठाने को तैयार नहीं है।)

शेफाली : आप भी माँ बस! कोई भी कुछ कह देगा और आप.....

माँ : ईश्वर करे ऐसे तूफान प्रत्येक लड़की की जिन्दगी में आये ..... बेटा! ऐसे तूफान से तो किसी के भी पैर उखड़ जाते!..... कितना सुन्दर है!..... पर कुछ रुकता तो, खैर कोई बात नहीं अब मिलेगा तो सब पूछूंगी। उसे कहना फिर आयेगा। कहना माँ ने बुलाया है।

शेफाली : आप भी माँ कहां पहुंच गयीं, हद है! (माँ से लिपट जाती है माँ जात नहीं पूछेगी? मुस्कुराती है)

माँ : चुप नालायक! (शेफाली को हाथ से डराती है मजाक में)

शेफाली : और कुल इत्यादि (माँ मुस्कुराती आगे बढ़ कर उसके मुह पर हाथ रख बंद कर देती है)

(पर्दा धीरे–धीरे गिर जाता है)

– समाप्त –

बाल शेखर दिवाकर
एफ– 1, 295, मदनगीर,
(अंबेडकर नगर)
नई दिल्ली – 110062